THE TIMES OF INDIA

Date: 28-02-18

Roll back the ban

Don't disrupt cattle markets, agriculture needs ease of doing business too

TOI Editorials

An attempt by government last May to ban cattle markets if trade eventually led to slaughter is reportedly being undone. The relevant law, Prevention of Cruelty to Animals Rule, was stayed last year by Supreme Court. Simultaneously, farmers' organisations asked for a restoration of their right to trade in cattle. While the revised version of the legislation is not yet in public domain, government should not impose new burdens on cattle trade in any way.

Last year's legislation represented an attempt to impose cultural beliefs of a section of society on the dairy industry. The economic burden of this attempt was borne by farmers. It is unfair that even while Prime Minister Narendra Modi talked about steps to lighten the regulatory environment for doing business in the non-agricultural sector, agriculture was subjected to additional burdens. For India's farmers, this came at a time when they had to confront a new danger, climate change, quite apart from the usual problems of low productivity, land fragmentation, lack of access to credit and markets. Battered on all sides, the last four years have been marked by agrarian distress. The Economic Survey pointed out that during this period real agricultural revenues remained constant.

Cattle are an asset for a farmer, with a visible production life cycle. Once an asset is no longer productive for an owner, it is only natural that he finds another buyer who can subsequently put it to use. Once BJP state governments and subsequently the Centre disrupted this economic cycle, farmers and cattle traders bore the economic burden. In addition, non-state actors in the form of vigilante groups have also been allowed to harm trading networks. Ironically, states with strict slaughter bans typically have a higher proportion of strays as farmers turn them loose, unable to bear the burden of feeding them.Government should change its approach to the farm sector. It has pursued some good initiatives, such as trying to create a national online market to give farmers more options. However, it has shackled them in other ways. Agriculture needs ease of doing business as much as other economic sectors. Farmers should not be asked to bear the burden of ideology. Adverse consequences of an ideological approach extend beyond farming to other job creating activities such as leather industry.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 28-02-18

मोबाइल विज्ञापन में बदलाव की जरूरत

अजित बालकृष्णन

समय के साथ-साथ विज्ञापनों का स्वरूप भी बदलता रहा है। नए दौर में मोबाइल फोन पर दिखने वाले विज्ञापनों की दुनिया में एक बड़े रचनात्मक बदलाव की प्रतीक्षा है। विस्तार से बता रहे हैं अजित बालकृष्णन

कई मायनों में विज्ञापन और उसके विविध स्वरूपों तथा समाज के बीच का रिश्ता काफी असहज रहा है। एक ओर यह शुरुआती दौर में समाचार पत्रों से लेकर टेलीविजन और बाद में वेबसाइटों और मोबाइल ऐप के रूप में मीडिया को जरूरी राजस्व मुहैया कराता आया है। वहीं दूसरी ओर समाज ने हमेशा विज्ञापन के तौर तरीकों को लेकर शंकालु रुख अपनाए रखा। फिर चाहे वह गोरा बनाने से जुड़ा विज्ञापन हो या सिगरेट जैसी नुकसानदेह चीजों का विज्ञापन अथवा राजनीतिक दलों द्वारा वोट मांगते विज्ञापन।

सन 1957 में आई वांस पैकर्ड की किताब द हिडन पर्सुएडर्स में पहली बार विज्ञापन जगत और उससे जुड़े लोगों को निहायत खराब ढंग से चित्रित किया गया था। रशेल कार्सन की किताब साइलेंट स्प्रिंग्स ने प्रदूषण फैलाने वाले रासायनिक उद्योगों को लेकर और राल्फ नाडर ने अपनी किताब अनसेफ एट द स्पीड में वाहन उद्योग को लेकर किया था। पैकर्ड की किताब में मनोवैज्ञानिकों और समाजविज्ञानियों के विज्ञापन जगत के कार्याधिकारियों के साथ मिलकर आम नागरिकों पर ऐसी चीजों को खरीदने का दबाव बनाने और उनकी आदत लगाने का ब्योरा है जिनकी उन्हें दरअसल आवश्यकता ही नहीं थी।

इसके अलावा कुछ अन्य किताबें ऐसी भी हैं जिनमें विज्ञापनों के प्रभाव को लेकर ही सवाल उठाए गए हैं। सर्जियो जाइमन की सन 2003 में आई किताब द एंड ऑफ एडवर्टाइजिंग एज वी नो इट में कहा गया कि 21वीं सदी तक विज्ञापन व्यवसाय से जुड़े लोग विज्ञापनों को लेकर इस कदर केंद्रित हो गए कि वे विज्ञापन की कला और मनोरंजन पर बहुत अधिक जोर देने लगे और उत्पाद को बेचने में उसकी भूमिका कहीं पीछे छूट गई। एआई रीस और लॉरा रीस ने 2004 में आई अपनी किताब द फाल ऑफ एडवर्टाइजिंग ऐंड द राइस ऑफ पीआर में अलग रुख अपनाया।उन्होंने दावा किया कि 30 सेकंड के टीवी विज्ञापनों या अखबारों और पत्रिकाओं में पूरे पन्ने के विज्ञापनों की शक्ति और उनके प्रभाव के दावे अतिरंजित हैं। उन्होंने बताया कि कैसे स्टार बक्स, बॉडी शॉप, वॉलमार्ट, रेडबुल और जारा बिना किसी विज्ञापन के इतने बड़े नाम बने। उन्होंने कहा कि बाजारविदों को विज्ञापन के बजाय जनसंपर्क की सहायता लेनी चाहिए और अपने उत्पादों के बारे में अनुकूल लिखवाना चाहिए। विज्ञापनों की सफलता और उनकी क्षमता को लेकर ये अलग-अलग विचार विज्ञापन जगत के अलग-अलग दौर को दर्शाते हैं। पहला बदलाव सन 1950 के दशक में अमेरिका में आया और पूरी दुनिया में फैल गया। वह था उस वक्त उत्पाद का जिंसीकरण। अगर एक दर्जन निर्माता अलग-अलग टूथपेस्ट बनाते थे और उनमें इस्तेमाल होने वाली चीजें और उनकी गुणवत्ता एक सी थी तो आखिर जिंगल अलग-अलग रखने के अलावा विज्ञापन में किया क्या जा सकता था?

जब नई तकनीक कोई नया मीडिया विकल्प तैयार करती है तब भी विज्ञापन का पहिया एक बार घूमता है। सन 1970 के दशक में रंगीन प्रिंटिंग प्रेस सस्ती हो गईं और पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई। इंडिया टुडे, बिजनेस इंडिया और स्टार डस्ट ने न केवल पाठकों बल्कि विज्ञापनदाताओं को भी लुभाया।अगला बदलाव टेलीविजन के जरिये हमारे घरों में आया। केबल के आगमन से टीवी प्रसारण की बाधा दूर हुई। अब आप एक क्षेत्र विशेष या भाषा पर ध्यान केंद्रित कर सकते थे। जी, टीवी18 और स्टार इस क्रांति के अगुआ बने। इन चैनलों पर भारतीय भाषाओं में 30 सेकंड के विज्ञापनों ने धूम मचा दी। हर बदलाव के वक्त पिछली पीढ़ी की विज्ञापन शैली को संघर्ष करना पड़ा।

आश्चर्य नहीं कि पहली बार जब वल्र्ड वाइड वेब का आगमन हुआ तो इंटरनेट के शुरुआती पांच सालों तक बैनर विज्ञापनों का ही बोलबाला रहा। बाद में जैसे-जैसे वेबसाइटों की तादाद बढ़ती गई और लोगों में पसंदीदा वेबसाइट की तलाश बढ़ती गई तो सर्च इंजन सामने आए। जिस तरह वाहनों की भीड़ भरी सड़क पर दोनों ओर विज्ञापन होर्डिंग होते हैं, वैसे ही सर्च इंजन ने खोज के विषय से जुड़े विज्ञापनों की भरमार करनी शुरू कर दी। कॉलेज शिक्षा से जुड़े विज्ञापनों के आसपास कॉलेज के विज्ञापन दर्शाना। उन्होंने यह तक कह दिया कि उनको भुगतान तभी किया जाए जब कोई विज्ञापन पर क्लिक करे। उसके बाद इंटरनेट विज्ञापनों में भी गतिशीलता आनी शुरू हुई और वे प्रदर्शन आधारित हो गए।इन दिनों हम एक और बदलाव के बीच में हैं। इन दिनों हम सभी स्मार्ट फोन इस्तेमाल करते हैं और दुनिया भर में विज्ञापन जगत से जुड़े लोग ऐसे विज्ञापन बनाने की जुगत में हैं जो मोबाइल फोन पर सही रहें।टेलीविजन पर आने वाले विज्ञापन मोबाइल पर सही नहीं हैं क्योंकि मोबाइल पर समूह के बजाय व्यक्ति को संबोधित करना होता है। वहां निजता का भी मामला है। साथ ही मार्केटिंग और विज्ञापन जगत में ये बातें भी सामने आ रही हैं कि ऐसे सर्च विज्ञापनों पर आने वाले क्लिक्स की तादाद में कमी देखने को मिल रही है।शायद अब वक्त आ गया है कि हम सन 1950 के दशक के पुराने विपणन सिद्धांत पर एक बार पुन: नजर डालें। वह सिद्धांत विज्ञापनों की प्रक्रिया और उपभोक्ता जिन चरणों से होकर गुजरता है उनका ब्योरा है। सबसे पहली बात तो यह कि उसे आपके ब्रांड के बारे में जानकारी होनी चाहिए। इसके बाद आप उसमें रुचि जगा पाने में सक्षम हों।

इसके बाद आता है उसके मन में आपका उत्पाद रखने की आकांक्षा पैदा करना। अब आती है उसके द्वारा आपका उत्पाद खरीदने और उसे अपने मित्रों या परिजन को सुझाने की बारी। खोज आधारित विज्ञापनों के साथ समस्या यह है कि यह केवल उन लोगों तक पहुंच पाता है जो शुरुआती दौर यानी जागरूकता, रुचि और इच्छा के तीन चरणों को पार कर चुके होते हैं और अब खरीदने के लिए तैयार होते हैं। ऐसे में तलाश है ऐसे रचनात्मक विज्ञापनों की जो मोबाइल फोन के जरिये ग्राहकों को इन शुरुआती तीन चरणों से पार लाएं और खरीद के लिए तैयार करें। जो भी इस पहेली को हल करेगा, चाबी उसी के हाथ होगी।

Date: 28-02-18

बैंकिंग कदाचार को बर्दाश्त करने की बुरी आदत

श्यामल मजूमदार

हर कोई इस बात को लेकर अचरज में है कि अपने नियोक्ताओं की नजर में 'विदेशी मुद्रा विशेषज्ञ' माना जाने वाला गोकुलनाथ शेट्टी महज उप प्रबंधक के पद से ही किस तरह सेवानिवृत्त हो गया? बैंकिंग पदानुक्रम में यह पद काफी निचले स्तर का है। उसके करियर की धीमी रफ्तार का प्रत्यक्ष कारण तो यह है कि उसने पंजाब नैशनल बैंक (पीएनबी) के 36 साल लंबे अपने करियर में केवल एक पदोन्नति ही ली थी। कई लोगों को इस पर भी आश्चर्य है कि पीएनबी में हुई 11,400 करोड़ रुपये की धोखाधड़ी के मुख्य आरोपियों में से एक शेट्टी मुंबई की फोर्ट शाखा में एक ही दायित्व का सात साल तक कैसे निर्वहन करता रहा? यह भी पता चला है कि शेट्टी को इस

शाखा में तैनाती के सात वर्षों के दौरान कम-से-कम दो बार बाहर भेजने की योजना बनी लेकिन बैंकिंग प्रणाली के भीतर के ही किसी शख्स ने उसका स्थानांतरण रुकवा दिया।हालांकि सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में कामकाज की शैली से परिचित लोगों के लिए यह कोई असामान्य बात नहीं है। सार्वजनिक बैंकों के कर्मचारी बड़ी संख्या में पदोन्नति ही नहीं लेते हैं ताकि उन्हें स्थानांतरित होकर गृहनगर से बाहर न जाना पड़े। पूर्वी भारत तो इस तरह की प्रवृत्ति के लिए खासा मशहूर है लेकिन देश के अन्य हिस्सों में भी यह आम है। बैंकों में ऐसे तमाम उदाहरण मिल जाएंगे जिनमें क्लर्क के तौर पर अपना करियर शुरू करने वाले कर्मचारी उसी पद पर रहते हुए सेवानिवृत्त भी हो गए।इसकी वजह यह है कि वे लोग पदोन्नति के लिए होने वाले सभी साक्षात्कारों से दूर रहते हैं। कुछ बैंकों ने इस प्रवृत्ति पर लगाम लगाने के लिए सख्ती बरतनी शुरू कर दी है और अपने कर्मचारियों को पदोन्नति के पहले के साक्षात्कारों में शामिल नहीं होने के बाद भी स्थानांतरित करने की चेतावनी दी है। लेकिन कई बैंकों में अब भी पुरानी परिपाटी जारी है और ऐसा बैंक के भीतर या बाहर के रसूखदार लोगों की मदद से ही होता है।अनेक सार्वजनिक बैंकों में एक विभाग से दूसरे विभाग में होने वाले स्थानांतरण भी रूटीन तरीके से रोक दिए जाते हैं।ऐसा दो वजह से होता है: पहला, बहुतेरे कर्मचारी अपने सुविधाजनक दायरे से बाहर नहीं निकलना चाहते हैं और दूसरा, बैंक प्रबंधन वर्षों से विशेषज्ञता वाले काम कर रहे कर्मचारियों को खुद भी छोडऩा नहीं चाहता है क्योंकि आसानी से उनका विकल्प नहीं मिल पाता है। पीएनबी घोटाला दिखाता है कि बदमाश कर्मचारी आसानी से इस व्यवस्था का फायदा उठा सकते हैं और उसका दुरुपयोग कर सकते हैं। बैंकिंग प्रणाली के भीतर नियंत्रण एवं संतुलन या पुष्टिकरण की व्यवस्था नहीं होने से ही ऐसा होता है। तमाम सार्वजनिक बैंकों ने अब विशेषज्ञ उम्मीदवारों को भर्ती करना शुरू किया है लेकिन सुनियोजित करियर विकास नहीं होने और अपर्याप्त वेतन एवं अन्य लाभों की वजह से वे बीच में ही नौकरी छोड़ देते हैं।

सार्वजनिक बैंकों के लिए प्रतिभावान उम्मीदवारों को अपने साथ जोडऩा खासा मुश्किल होता है क्योंकि इन बैंकों के वेतन ढांचे से काफी छेड़छाड़ हुई है। सरकार और कर्मचारी संघों के दबाव के चलते बैंकों के निचले स्तर के कर्मचारियों का वेतन तो बढ़ गया है लेकिन वरिष्ठ पदों पर बैठे अधिकारियों का वेतन काफी हद तक गैर-प्रतिस्पद्र्धी ही है।अगर वरिष्ठ कैडर को हटा दें तो सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक कर्मचारियों का औसत वेतन निजी क्षेत्र के बैंकों की तुलना में अधिक है।सार्वजनिक बैंकों के साथ एक और समस्या उनकी निगरानी प्रणाली की गुणवत्ता को लेकर है। भारतीय रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर के सी चक्रवर्ती ने 2013 में एक संगोष्ठी में बैंकिंग प्रणाली की खामियों को दुरुस्त करने के उपाय विस्तार से बताए थे। चक्रवर्ती की तरफ से उठाया गया मुख्य बिंदु यह था कि शीर्ष स्तर पर जवाबदेही का अभाव है। कुछ गिने-चुने हाई-प्रोफाइल मामलों में भले ही शीर्ष अधिकारियों पर कार्रवाई हुई हो, लेकिन आम तौर पर कार्रवाई की जद में निचले स्तर के कर्मचारी ही आते हैं। जब भी धोखाधड़ी का कोई मामला सामने आता है तो सबसे पहले निचले स्तर पर काम करने वाले बैंक कर्मचारियों पर ही कार्रवाई होती है।बड़े स्तर पर की गई धोखाधड़ी का विश्लेषण करने पर कुछ रोचक नतीजे सामने आते हैं। बैंक संदिग्ध खातों को धोखाधड़ी में शामिल बताने में काफी देर कर देते हैं, जांच में एक साथ कई अधिकारियों को शामिल कर दिया जाता है और अंत में कुछ कनिष्ठ अधिकारियों को इन गड़बडिय़ों के लिए जिम्मेदार बता दिया जाता है। रिजर्व बैंक के विश्लेषण के मुताबिक बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी वाले 230 मामलों में जिन 719 बैंक अधिकारियों को दोषी बताया गया उनमें से 426 अधिकारी वरिष्ठ प्रबंधक, 196 मुख्य प्रबंधक एवं सहायक महाप्रबंधक और 94 अधिकारी उप महाप्रबंधक, महाप्रबंधक एवं मुख्य महाप्रबंधक पदों पर तैनात थे। धोखाधड़ी के लिए जिम्मेदार ठहराए गए केवल तीन अधिकारी ही बैंकों के शीर्ष प्रबंधन एवं निदेशक मंडल से ताल्लुक रखते थे।दरअसल अधिकतर बैंकर सतर्कता विभाग में स्थानांतरित किए जाने से नाखुश हो जाते हैं। उन्हें लगता है कि उन्हें किनारे किया जा रहा है और मुख्य बैंकिंग कामकाज से दूर किया जा रहा है। उनके सहकर्मी भी उन्हें गैरजरूरी सवाल पूछकर समस्याएं खड़ी करने वाले त्वरित फैसलों की राह में रोड़े अटकाने वाले शख्स के तौर पर ही देखते हैं। हालांकि ऐसा होना काफी दुर्भाग्यपूर्ण है और बैंकिंग गतिविधियों में कदाचार को बर्दाश्त नहीं किए जाने के बारे में सख्त संदेश देने में समूचे बैंकिंग क्षेत्र के शीर्ष प्रबंधन की नाकामी को दर्शाता है।ऐसा लगता है कि चक्रवर्ती के उस भाषण को भी बाकी दूसरे दस्तावेजों की तरह बहुत लोगों ने पढ़ा और सुना लेकिन बहुत कम लोगों ने ही उसका अनुसरण किया है।

Date: 28-02-18

बदला जाए ढांचा

संपादकीय

राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली को प्रशासनिक विवाद और राजनीतिक संकट की मानो आदत सी हो गई है। इनका नाता प्रदेश के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल और केंद्र सरकार से है। मुख्यमंत्री के मन में संस्थानों के प्रति नाम मात्र का ही सम्मान है जबकि केंद्र सरकार प्रशासनिक मशीनरी पर से नियंत्रण छोडऩा नहीं चाहती। केंद्र ने केजरीवाल का काम कठिन बनाने में कोई कसर उठा नहीं रखी है। परंतु ताजा विवाद अतीत से एकदम अलग है। दिल्ली के मुख्य सचिव ने एक गंभीर आरोप लगाया है। उनका कहना है कि मुख्यमंत्री के आवास के भीतर आम आदमी पार्टी के विधायकों ने उन पर हमला किया। दिल्ली के शीर्ष नौकरशाह ने पुलिस में शिकायत की और पुलिस ने मुख्यमंत्री के आवास पर छापा मारा। कुछ रिपोर्ट के मुताबिक सीसीटीवी रिकॉर्डिंग की फॉरेंसिक जांच की जाएगी। नौकरशाही संगठनों की नाराजगी जाहिर है। वहीं दिल्ली सरकार के समर्थकों और आप का कहना है कि केंद्र सरकार की ओर से तैनात नौकरशाह केजरीवाल प्रशासन के खिलाफ राजनीति प्रेरित अभियान चला रहे हैं। दरअसल दिल्ली सरकार को यह अधिकार ही नहीं है कि वह अहम पदों पर अपनी पसंद के नौकरशाह नियुक्त कर सके।

पुलिस को हमले के इस आरोप की पारदर्शी तरीके से जांच करनी चाहिए। उसके बाद अदालत तय करेगी कि मामला दरअसल क्या था। बहरहाल, केजरीवाल भी पूरे प्रकरण से पल्ला नहीं झाड़ सकते क्योंकि उन पर आरोप है कि उन्होंने एक तरह से नौकरशाह पर किए गए हमले को स्वीकार ही किया। ऐसी शासन शैली को माफ नहीं किया जा सकता है जिसमें नौकरशाहों पर शारीरिक हमला किया जाता हो। बतौर राजनेता केजरीवाल ऐसे मामलों में उचित कदम उठाने में विफल रहे हैं और उन्हें इसकी जवाबदेही ही नहीं उठानी चाहिए बल्कि कीमत भी चुकानी चाहिए।यहां बड़े ढांचागत प्रश्न भी हैं जिनकी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। दिल्लीवासियों को केंद्र सरकार और दिल्ली सरकार के बीच की लड़ाई की कीमत चुकानी पड़ रही है। इसका असर दरअसल शासन और जवाबदेही पर पड़ रहा है। यह बात एकदम स्पष्ट है कि दिल्ली को सीमित राज्य का दर्जा देने का प्रयोग बुरी तरह नाकाम हो रहा है। एक स्तर पर देखा जाए तो इसके लिए केजरीवाल को दोषी ठहराना बेमानी है। देश में यह चलन रहा है और हर मुख्यमंत्री चाहता है कि वह अपनी पसंद के नौकरशाह नियुक्त करे। कुछ ही ऐसे होंगे जो अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी द्वारा नियुक्त नौकरशाहों के साथ निबाह करें। ढांचागत कमी की बात करें तो उसका संबंध मौजूदा राजनीतिक झगड़े से परे है। दरअसल जनता के चुने हुए मुख्यमंत्री की जवाबदेही और उसके अधिकारों के बीच बड़ा अंतर है।इस स्थिति को बदलना होगा। दिल्ली में पुलिस और नौकरशाही का नियंत्रण निश्चित तौर पर चुनी हुई सरकार के हाथ होना चाहिए। नगर निकाय भी जवाबदेही को बांटने और सत्ता के ढांचे को जटिल बनाने का ही काम करता है। उनको समाप्त किया जाना चाहिए और उनके राजस्व आधार, अधिकार और जवाबदेही को राज्य सरकार को सौंपा जाना चाहिए। दिल्ली विकास प्राधिकरण और उसके नियंत्रण वाली जमीन को भी राज्य सरकार के हवाले किया जाना चाहिए।संक्षेप में कहें तो दिल्ली को एक पूर्ण राज्य के रूप में काम करने देना चाहिए। खासतौर पर तब जबकि सभी राजनीतिक दल इस मुद्दे पर सहमत भी हैं। केंद्र सरकार के संस्थानों और लोगों के संरक्षण के लिए नई दिल्ली नगरपालिका परिषद को छोड़ देना चाहिए और राज्य में उच्च पदस्थ लोगों की सुरक्षा का दायित्व एक अलग पुलिस बल को दिया जाना चाहिए। दुनिया भर में यही व्यवस्था काम करती है और अब वक्त आ गया है कि भारत भी इसे अपना ले।

दैनिक भास्कर

Date: 28-02-18

कनाडा के प्रधानमंत्री की यात्रा विवाद में क्यों?

संदर्भ: ट्रूडो को यह अहसास करा दिया गया कि उनके देश के खालिस्तानियों को भारत में कोई समर्थन नहीं

जी. पार्थसारथी,राजनयिक और पाक में भारत के पूर्व उच्चायुक्त

दुनिया में कनाडा एकमात्र ऐसा देश है, जहां भारतीय उच्चायुक्त के साथ कनाडा के सशस्त्र सुरक्षा अधिकारी होते हैं। यह 1984 के ऑपरेशन ब्ल्यू स्टार के बाद शुरू हुआ। राजनयिकों को ही नहीं, वहां आने वाले भारतीय नेताओं के लिए खतरा पिछले तीन दशकों से बना हुआ है। 23 जून 1985 को एअर इंडिया के कनाडा से लंदन होते हुए दिल्ली जा रहे विमान में बम विस्फोट हुआ था। 24 भारतीय नागरिकों सहित 329 लोग मारे गए, जिनमें कनाडा के 268 नागरिक थे, जो ज्यादातार भारतीय मूल के ही थे। जांच में पता चला कि पाक स्थित आतंकी गुट बब्बर खालसा ने यह साजिश रची थी। तीन लोगों पर मुकदमा चला और केवल इंदरजीत सिंह रावत को दोषी पाया गया। 15 साल की सजा के बाद वह 2010 में रिहा हो गया।कनाडा में भारतीय नेताओं पर भी हमले हुए हैं। कनाडाई सिख जसपाल अटवाल को तीन अन्य के साथ अकाली नेता मलकियत सिंह सिद्धू पर हमले के प्रयास का दोषी पाया गया। तब पंजाब सरकार में राज्यमंत्री सिद्धू 1986 में वेंकूवर स्थित रिश्तेदारों से मिलने आए थे तथा हमले में घायल हो गए थे। बाद में सिख उग्रवादियों ने 1991 में उनकी पंजाब में हत्या कर दी। अटवाल पर भारत-कनाडाई राजनेता उज्जल दोसांज पर फरवरी 1985 में घातक हमले का आरोप भी लगा था। दोसांज खालिस्तान आंदोलन के मुखर आलोचक हैं।

अजीब है कि दोषी सिद्ध होने के बाद जल्दी ही उसे तकनीकी आधार पर रिहा कर दिया गया। रिहा होने के बाद वह कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो की सत्तारूढ़ लिबरल पार्टी में राजनीतिक रूप से प्रभावशाली नेता हो गया। कनाडा के सिखों के आईएसआई से लंबे समय से संबंध रहे हैं- कनाडा में भी और ननकाना साहिब की तीर्थयात्रा के बहाने पाक में भी। आईएसआई ऐसी 'तीर्थयात्राओं' का इस्तेमाल कनाडाई खालिस्तानियों और भारतीय सिख तीर्थयात्रियों की मुलाकात कराने में करती है। ठोस सबूत हैं कि पाकिस्तान के लाहौर जैसे शहरों से सीमा पार आतंकी गतिविधियों में कनाडा के खालिस्तानियों का हाथ रहा है।प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने भारत यात्रा पर आए कनाडा के प्रधानमंत्री ट्रूडो के साथ रुखाई बरती। लेकिन, कनाडा के साथ यदि किसी ने बेबाक बातचीत की तो वे थे पंजाब के मुख्यमंत्री अमरिंदर सिंह। उन्होंने विवादित रक्षा मंत्री हरजीत सिंह सज्जन के साथ आए ट्रूडो से कहा कि पंजाब में सीमा के आर-पार आतंकवाद भड़काने में कनाडाई लिप्तता को लेकर उन्हें गंभीर चिंता है। अमरिंदर सिंह ने ऐसे लोगों के नाम और ब्योरे तक उन्हें दिए। ट्रूडो के लिए संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ी गई कि कनाडा के खालिस्तानियों को भारत में कोई राजनीतिक अथवा जनसमर्थन नहीं है और इस मसले पर उन्हें ध्यान देना ही होगा। सिंह की सराहना की जानी चाहिए कि कनाडा के खालिस्तानी सिखों की गतिविधियों पर भारत की चिंताओं को उन्होंने बेबाकी से रखा। यही लोग ट्रूडो के समर्थक व मजबूत वोट बैंक हैं।

प्रधानमंत्री मोदी की इस बारे में अवांछित आलोचना की गई है कि उन्होंने नई दिल्ली में ट्रूडो के आने पर उनकी अगवानी नहीं की। वास्तविकता यह है कि भारतीय प्रोटोकॉल प्रक्रिया के तहत किसी विदेशी राष्ट्रपति अथवा प्रधानमंत्री के भारत आने पर आमतौर पर राज्यमंत्री व प्रोटोकॉल अधिकारी एयरपोर्ट पर उनकी अगवानी करते हैं। इसमें बदलाव के दुर्लभ अपवाद भी हैं। डॉ. मनमोहन सिंह ने अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और सऊदी अरब के शाह अब्दुल्ला की दिल्ली एयरपोर्ट पर अगवानी की थी। इसी प्रकार प्रधानमंत्री मोदी ने भी जापान, संयुक्त अरब अमीरात, इजरायल, चीन और अमेरिका से आने वाले अपने अतिथियों की एयरपोर्ट पर अगवानी की थी।

भारत यात्रा पर आए किसी भी अतिविशिष्ठ अतिथि का पहला आधिकारिक कार्यक्रम राष्ट्रपति भवन पर गार्ड ऑफ ऑनर का होता है,जहां प्रधानमंत्री उनकी औपाचारिक अगवानी करते हैं। हालांकि, ट्रूडो ने दिल्ली आने के पूर्व छह दिन की भारत यात्रा का फैसला लिया। जब वे अधिकृत बैठकों के लिए दिल्ली पहुंचे तब उन्हें राजकीय सम्मान दिया गया और प्रधानमंत्री मोदी ने उनकी औपचारिक अगवानी की। मीडिया रिपोर्टों के विपरीत ट्रूडो और मोदी के बीच आधिकारिक बातचीत बहुत अच्छी रही। फिर कनाडा ऐसा देश है, जो सांस्कृतिक, नस्लीय और धार्मिक विविधता का स्वागत करता है। वहां 12 लाख भारतीय रहते हैं, जिनमें से 4,68,670 सिख हैं।अमेरिका और यूरोप में नस्लवाद और नस्लवादी भेदभाव से ग्रस्त इलाके हैं। इसके विपरीत कनाडा में नस्लवादी व्यवहार और नस्लीय भेदभाव की घटनाएं बहुत ही कम हैं। फिर जब अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रम्प अमेरिका में भारतीयों के लिए जॉब पाना इतना कठिन बना रहे हैं, कनाडा में भारतीय छात्रों के लिए पोस्ट ग्रेजुएशन जॉब में तुलनात्मक रूप से खुले द्वार की नीति है। ट्रूडो की यात्रा ऐसे समय हुई है, जब भारत और कनाडा के आर्थिक संबंध रफ्तार पकड़ रहे हैं।तेजी से बढ़ती भारतीय अर्थव्यवस्था खनिज, कच्चे तेल व गैस भंडारों जैसे संसाधनों से समृद्ध कनाडा की आर्थिक समृद्ध में मानवीय पूंजी काफी योगदान दे सकती है। भारत में कई लोग भूल जाते हैं कि परमाणु शोध, बिजली व पुनर्शोधन सुविधाओं में कनाडा के व्यापक सहयोग से ही देश का परमाणु कार्यक्रम शुरू हुआ था। अब जब कनाडा में परमाणु ऊर्जा उद्योग को पुनर्जीवित किया जा रहा है तो परमाणु ऊर्जा दोनों देशों के बीच सहयोग का बड़ा क्षेत्र हो सकता है। कनाडा भारतीय परमाणु संयंत्रों को यूरोनियम देने वाला महत्वपूर्ण सप्लायर है।कनाडा से भारत की ओर आने वाला पूंजी प्रवाह 20 अरब डॉलर का है। कनाडा में भारत का पूंजीगत निवेश करीब 2 अरब डॉलर का है। कनाडा में भारत का निवेश सॉफ्टवेयर, स्टील और प्राकृतिक संसाधनों में फैला हुआ है। भारत के निजी व सार्वजनिक क्षेत्र की अधिकाधिक कंपनियां और बैंक उत्तरोत्तर बढ़ते व्यापार और निवेश की संभावनाओं को देखते हुए कनाडा में अधिकाधिक ऑफिस स्थापित कर रहे हैं। इसलिए वक्त की मांग कनाडा के साथ आर्थिक व ऊर्जा सहयोग बढ़ाने की है। इसके साथ कनाडा सरकार और वहां के नागरिक समाज के संगठनों के साथ काम करके उस देश में भारत के खिलाफ हिंसक पृथकतावाद चलाने के हिमायतियों से कारगर ढंग से निपटना होगा।

नईदुनिया

Date: 27-02-18

तय करें जवाबदेही

संपादकीय

पंजाब नेशनल बैंक में घोटाले के बाद जिस तरह जान-बूझकर कर्ज न लौटाने वाले सामने आए, उसे देखते हुए वित्त मंत्रालय की सक्रियता स्वाभाविक है, लेकिन अच्छा होता कि उसने सरकारी बैंकों को जैसे निर्देश अब दिए, वैसे पहले ही दे दिए होते। वित्तीय सेवा सचिव ने सभी सरकारी बैंकों के प्रबंध निदेशकों को कहा है कि वे 50 करोड़ से ज्यादा एनपीए वाले खातों की जांच करें और जरूरत पड़ने यानी धोखाधड़ी की आशंका पर सीबीआई, प्रवर्तन निदेशालय और राजस्व खुफिया निदेशालय को सूचना दें। इस निर्देश से यही संकेत

मिल रहा है कि सरकारी बैंक आम तौर पर **इसकी** छानबीन नहीं करते थे कि उनके कर्जे धोखाधड़ी के कारण एनपीए में तो तब्दील नहीं हो रहे हैं। इसकी पुष्टि इससे होती है कि कई **बैंकों** ने जान-बूझकर कर्ज न लौटाने वालों के बारे में सीबीआई और प्रवर्तन निदेशालय को जानकारी तब दी, जब घोटालेबाज नीरव मोदी के विदेश भागने की खबर आई।दरअसल यही कारण है **कि** कर्ज चुकाने में समर्थ होने के बाद भी उन्हें न लौटाने वालों के नित नए मामले सामने आ रहे हैं। इनमें कुछ मामले तो ऐसे भी हैं कि **कर्ज** लेने वालों के बारे में यही नहीं पता कि वे देश में हैं या विदेश में। इस सबसे कुल मिलाकर यही रेखांकित हो रहा है कि बैंकों का **प्रबंधन** कुप्रबंधन का पर्याय बन चुका था और किसी को इसकी परवाह नहीं थी कि फंसे कर्जों की वसूली करनी है। नि:संदेह इस **स्थिति** के लिए रिजर्व बैंक की भी जवाबदेही बनती है, लेकिन उसके साथ-साथ **वित्त** मंत्रालय भी उत्तरदायी है। चूंकि बैंकों के बोर्ड में स्वतंत्र **निदेशकों** की नियुक्ति सरकार करती है और बैंकों के चेयरमैन भी उसकी ओर से नियुक्त किए जाते हैं, इसलिए वह सारा दोष **रिजर्व** बैंक पर मढ़कर कर्तव्य की इतिश्री नहीं कर सकती।

सरकारी बैंकों के कुप्रबंधन के लिए किसी न **किसी** स्तर पर लेखा परीक्षण की मौजूदा व्यवस्था भी **जिम्मेदार** है। नोटबंदी के बाद सरकार को इसका आभास अच्छी तरह से हो गया था कि लेखा परीक्षक अपना काम सही तरह नहीं कर रहे हैं। उसे तभी यह देखना चाहिए था कि बैंकों के लेखा परीक्षण के नाम पर कहीं खानापूर्ति और लीपापोती तो नहीं हो रही है? कम से कम अब तो इसे न केवल देखा जाना चाहिए, बल्कि लेखा परीक्षकों की **संस्था** आईसीएआई के जरिए यह सुनिश्चित भी किया जाना चाहिए कि बैंकों का लेखा परीक्षण नीर-क्षीर ढंग से किया जाए।पंजाब नेशनल बैंक में घोटाले के बाद आईसीएआई की ओर से यह कहा जाना एक हद तक ही सही है कि जांच पूरी न होने तक चार्टर्ड एकाउंटेट के पेशे के बारे में निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं होगा। यह **अपेक्षा** उचित नहीं, क्योंकि फंसे कर्ज की राशि करीब आठ लाख करोड़ रुपए पहुंच गई है और जान-बूझकर कर्ज न लौटाने वालों की **संख्या** भी बढ़ती जा रही है। बेहतर होगा कि वित्त मंत्रालय केवल बैंकों को निर्देश **जारी** करने तक ही सीमित न रहे। उसे हर हाल में यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके निर्देशों का पालन भी हो। इसी के साथ उसे सभी जिम्मेदार व्यक्तियों और संस्थाओं की जवाबदेही भी तय करनी होगी।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 27-02-18

लोकतंत्र या ज्ञानतंत्र

राजकिशोर

लोकतंत्र के बारे में वे सारे शक सही निकले जो **उसकी** शुरु आत में बहुत-से लोगों के मन में थे. सब से **भारी** तर्क यह था कि लोकतंत्र में एक विद्वान के वोट का मूल्य एक मूर्ख जितना ही होता है.यह एक अलग प्रश्न है कि विद्वानों ने **दुनिया** का कितना भला किया है और कितना बुरा? मूखरे के बारे में कहा जा सकता है कि उनमें स्वयं को छोड़ कर किसी और का नुकसान करने की क्षमता ही नहीं होती. क्या लोकतंत्र भीड़तंत्र होता है? इसका जवाब हां में देते हुए उर्दू के महान शायर अकबर **इलाहाबादी** ने कहा था: जम्हूरियत इक तर्जे-हुकूमत है कि जिसमें, बंदों को गिना करते **हैं** तौला नहीं करते.

सरल हिन्दी में, लोकतंत्र वह शासन पद्धति है, जिसमें आदमियों को गिना जाता है, तौला नहीं जाता. यानी यह नहीं देखा जाता कि किसकी बात में कितना वजन है, फैसला यह गिन कर किया जाता है कि कितने हाथ प्रस्ताव के पक्ष में उठे हुए हैं. हाथ दिमाग पर भारी पड़ते हैं. फिर भी लोकतंत्र को व्यापक स्तर पर अपनाया गया तो इसीलिए कि दुनिया की कोई भी अन्य शासन पद्धति इससे बेहतर नहीं है. यह समस्या आज भी बनी हुई है. लोकतंत्र की सीमाएं उजागर हो चुकी है, यह देखा जा चुका है कि लोकतंत्र की सीढ़ियां चढ़ते हुए हिटलर जैसा आदमी भी शासन में आ सकता है, लोकतंत्र की रक्षा के नाम पर जॉर्ज बुश इराक पर हमला कर सकता है, ट्रंप जैसे कट्टरतावादियों को भी बहुमत से चुना जा सकता है और लोकतंत्र में जनता का मुख्य काम हो जाता है एक भ्रष्ट शासक को दूसरे भ्रष्ट से बदलना. यह अनुभव तीसरी दुनिया का ही नहीं है, पश्चिम में भी लोकतंत्र फेल हो चुका है. वहां भी समाज एक तरफ जा रहा है और शासन दूसरी तरफ. तीसरी दुनिया के लोगों को विकल्प की सब से ज्यादा जरूरत है, पर वहीं विकल्प की चेतना सब से कम है. एक मिसरा कहता है कि 'मेरी कश्ती वहीं डूबी जहां पानी सब से कम था'.

यह स्थिति हम तो स्वीकार कर लेते हैं, पर पश्चिम के दिमाग में कोई-न-कोई कीड़ा हमेशा कुलबुलाता रहता है. नई-नई चीजें सोचने में वे आगे हैं. इस मामले में उनका उत्साह देखते ही बनता है. पश्चिमी चिंतकों में कुछ वर्षो से यह बहस चल रही है कि लोकतंत्र को क्यों न ज्ञानतंत्र में बदला जाए? भारत में भी ज्ञान-आधारित समाज बनाने की मुहिम छिड़ी हुई है. माना जा रहा है कि जिसकी पहुंच कंप्यूटर या इंटरनेट तक है, वह ज्ञानी है. ज्ञान और सूचना के संबंध की बात छोड़ दी जाए, तो ज्ञानतंत्र के समर्थकों का कहना यह है कि चूंकि लोकतंत्र कोई सीधी-सरल व्यवस्था नहीं है और सरकार को बहुत ही जटिल स्थितियों में निर्णय लेना पड़ता है, इसलिए आज के लोकतंत्र को मूर्ख और अज्ञानी नहीं चला सकते. वे जितना अधिक सूचना-संपन्न होंगे, उतने ही विवेक से वोट दे सकते हैं और सरकार चुन सकते हैं. वोटर का अज्ञान राजनीतिज्ञ के अहंकार को मजबूती देता है. इसलिए प्रस्ताव यह है कि सभी वोटरों के मत को एक जैसा मान न दिया जाए. जो मतदाता ज्यादा सूचना-संपन्न है, उसकी राय को बीस-पचीस प्रतिशत अधिक मूल्यवान माना जाए. मतदाताओं को सूचना-संपन्न बनाने के लिए अभियान चलाया जाए. समय-समय पर परीक्षाएं आयोजित की जाएं, यह देखने के लिए कि किसकी सूचना-संपन्नता का स्तर क्या है?

राज्य तंत्र पर सब से ज्यादा विचार करने वाले प्लेटो ने दार्शनिक राजा की कल्पना की थी और कहा था कि कोई दार्शनिक ही राजा होने के योग्य है. इस तरह, लोकतंत्र को ज्ञानतंत्र में बदलने वाले उत्साहियों का मानना यह है कि दार्शनिक राजा की कल्पना तभी साकार हो सकती है, जब नागरिक भी दार्शनिक हों. ज्ञानी नागरिक ही ज्ञानी शासकों का चुनाव कर सकते हैं. लोकतंत्र की अस्तित्वगत बुराई यह नहीं है कि शासक भ्रष्ट हैं, बुराई यह है कि मतदाता अक्षम हैं. वे सही प्रतिनिधियों का चुनाव करना नहीं जानते. इसलिए लोकतंत्र को सुधारना है तो सब से पहले नागरिकों में सुधार लाना होगा वे ही लोकतंत्र की नींव हैं. कोई भी विचार किसी एक जगह पैदा नहीं होता. ज्ञानतंत्र की अनुगूंज हमारे यहां भी सुनी जाने लगी है. बल्कि पंचायतों में तो इस पर अमल भी शुरू हो गया है.

पंच-सरपंच से ले कर जिला परिषद के सदस्यतों और पदाधिकारियों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता निर्धारित कर दी गई है. कुछ राज्यों में तो यह शर्त भी है कि जो पंचायत का चुनाव लड़ेगा उसके घर में पक्का शौचालय होना चाहिए. कहने की जरूरत नहीं कि यह सांड़ को सींग से नहीं, उसकी पूंछ से पकड़ने की कवायद है. बजाय सभी नागरिकों के लिए शिक्षा और स्वच्छता की सुविधाएं जुटाने की, हम लायक पंचायत अधिकारियों का चुनाव करने में लग गए हैं. यह लोकतंत्र को सिर के बल खड़ा कर देना है; नागरिक राजा को नहीं चुन रहे हैं, राजा नागरिकों को चुन रहे हैं. यह सर्वतंत्र को कुछतंत्र में बदलने की साजिश है, जिसकी ओर न्यायालयों का भी ध्यान नहीं गया है और उन्होंने इस तरह की ऊलजलूल शतरे को न्यायिक वैधता प्रदान कर दी है. लेकिन जो लोग लोकतंत्र को ज्ञानतंत्र में बदलने का उत्साह दिखा रहे हैं, वे षड्यंत्रकारी नहीं हैं. उनकी चिंता लोकतंत्र को पूर्ण बनाने की है. उन्हें कौन बताए कि मनुष्य की तरह लोकतंत्र भी अपूर्ण होने को बाध्य है. लोकतंत्र की खूबसूरती ही इस मान्यता में है कि हर आदमी बराबर है. इस बराबरी को मिटा दिया जाए, तो एक ऐसी विषमता का निर्माण होगा, जो नई-नई विषमताओं की रचना करेगी.इतनी ही महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सूचना-

संपन्न होना ही ज्ञानी होना नहीं है. सट्टा बाजार के खिलाड़ी बहुत अधिक सूचना संपन्न होते हैं. उन्हें अर्थव्यवस्था और राजनीति में होने वाले छोटे-मोटे परिवर्तनों की भी जानकारी होती है. लेकिन वे अपनी इस जानकारी का उपयोग राष्ट्रहित में नहीं करते हैं. यदि हम ज्ञानतंत्र के नाम पर लोकतंत्र को एक विशिष्ट तबके तक सीमित कर देंगे, तो हो सकता है तकनीकी अर्थ में लोकतंत्र बेहतर हाथों में हों, पर बहस और विचार की स्वतंत्रता सीमित हो जाने पर बेहतर कब बदतर में बदल जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता. जिन्हें अपने ज्ञान पर बहुत गर्व है, उनसे यही निवेदन किया जा सकता है कि वे उसे जन-जन तक ले जाएं, इसी में उसकी सार्थकता है. लोकतंत्र भी इसे ही कहते हैं.

THE HINDU

Date: 27-02-18

Don't discount WaSH

R. Hemalatha (R. Hemalatha is Director, National Institute of Nutrition, Hyderabad)

It is too early to reject the link between sanitation and stunting.The recent article "Can sanitation reduce stunting?" (The Hindu, February 15) brought forth an important and interesting debate on sanitation that has been attracting considerable traction among health, nutrition and social researchers and policymakers around the world, more so in the lower and middle income (LAMI) countries. The article touched upon many dimensions and possible reasons to explain why Water, Sanitation and Hygiene (WaSH) trials in countries like Kenya and Bangladesh ended, disappointingly, with no palpable reduction in stunting among children.

Problem of open defecation

While these countries are dramatically different from India, and open defecation remains a persistent problem despite sustained and concerted efforts under the Swachh Bharat Abhiyan (SBA) campaign over the last few years, the very fact that over half (about 52%) of rural India still defecates in the open is still a reason why it may be too early to quash or discount SBA. The campaign is beyond mere construction of toilets. The importance it accords to cleanliness, hygiene and sanitation can go a long way in India's fight against not only stunting (low height for age) but also many other forms of malnutrition.Stunting is driven by multiple factors, one of which is inflammation. Inflammation is a normal biological response of body tissues to stimuli such as disease-causing bacteria (pathogens), but ironically repeated exposure to high doses of bacteria that are not linked with diseases or diarrhoea also cause inflammation. Children living in environments where hygiene is poor and open defecation is common are regularly exposed to high doses of bacteria that will not cause diarrhoea or frank gastrointestinal infections, but certainly stimulate low-grade chronic inflammation, as observed in one of our studies wherein 2- to 5-year-old children had higher total bacterial count and inflammatory markers compared to those reported from other countries. Inflammation down regulates growth factors, and thus impairs normal growth in children. Mothers with inflammation in the gestation tissues had smaller babies in our study.

When the effect of poor sanitation is obviously passing on from one generation to the other, it might take at least a generation to adopt WaSH interventions before their outcomes can be seen. Therefore, short-term trials like the ones in Kenya and Bangladesh are bound to show little or no effect. In addition, in India, where the baseline, unlike in those countries, is so large (over 50% of open defecation against 1% in Bangladesh) even small improvements can demonstrate significant and palpable changes. For that matter, the difference in prevalence of open defecation in urban (7%) and rural (52%) India is large and the figures of stunting are much lower in urban children than among their rural counterparts. This difference may not necessarily establish the cause-and-effect relationship but it certainly indicates that toilets and sanitation are important factors associated with stunting.

The Bangladesh way

It is indeed true that mere building of toilets cannot prompt people to use them as there are a lot of social, cultural and behavioural aspects attached to it. What we need to learn from Bangladesh is how they have managed to bring down open defecation to less than 1% by 2016, from a whopping 42%, in a little over a decade. Bangladesh's sanitation victory definitely did not come easy. A huge chunk of public and charity money was spent on building toilets, and campaign volunteers slogged to change public attitudes and habits. Children were used literally as whistle-blowers and agents of change while door-to-door campaigns were carried out. It was done in a dogged campaign in mission mode supported by 25% of the country's overall development budget. Given its vastness, diversity and varied views, India may take time to change, but let us not think all is pointless with WaSH, and nothing is working.